ੴ वाहिगुरु जी की फतहि ।।

साहिबज़ादों की लासानी शहीदियाँ

: लेखक :

जगजीत सिंह

धर्म प्रचार कमेटी

दिल्ली सिक्ख गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी

साहिबज़ादों की लासानी शहीदियाँ

लेखक : जगजीत सिंघ

पहले छपा : 40,000 प्रतियां
अक्तुबर 2009 : 5,000 प्रतियाँ

कीमत : भेटा रहित

प्रकाशक:
धर्म प्रचार कमेटी
दिल्ली सिक्ख गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी
गुरु गोबिन्द सिंघ भवन,
गुरुद्वारा रकाब गंज साहिब,
नई दिल्ली -110001
फोन : 30964039, 30964040, 30964041
23737328, 23737329
फैक्स : 23317511

मुद्रक :
गुरु उपदेश प्रिंटरज
गुरू ग्रंथ साहिब भवन,
गुरुद्वारा रकाब गंज साहिब,
नई दिल्ली -110001

साहिबज़ादों की लासानी शहीदियाँ

जगजीत सिंघ

समर्पित

सरहिंद और चमकौर के
अमर शहीदों को

आमुख

सुनते आये हैं कि पुत्रों से बड़ा कोई धन नहीं होता। सुनते यह भी आये हैं कि प्राचीनकाल से ही हमारे देश में 'घर का चिराग', 'कुल का दीपक', आदि जैसे नामों से संबोधित किये जाने वाले पुत्र की प्राप्ति के लिये बड़े–बड़े यज्ञ और अनुष्ठान किये जाते रहे हैं। मां–बाप के लिये पुत्र का मोह कितना अधिक और वियोग कितना असहनीय होता है, इसकी पुष्टि करने वाली मिथकीय और पौराणिक कथाओं से इतिहास भरा पड़ा है। रामायण का राम वनवास प्रसंग ही लें। पिता राजा दशरथ द्वारा महारानी कैकेयी को दिये गये वचन को पूरा करने के लिये आज्ञाकारी श्री राम, भाई लक्ष्मण और पत्नी सीता सहित चौदह वर्ष के लिये वनवास चले गये तो राजा दशरथ बेटे का वियोग सह न सके। इसी वियोग तथा सदमे में उन्होंने प्राण त्याग दिये। इसी प्रकार एक बार जब राजा दशरथ के तीर से जानवर के भ्रम में श्रवण कुमार की मृत्यु हो गई तो उसके नेत्रहीन मां–बाप ने पुत्र वियोग में तड़प तड़प कर प्राण त्याग दिये।

दूसरी ओर देखें सिख़ इतिहास को जहां एक पिता ने धर्मरक्षा के लिये एक नहीं, दो नहीं बल्कि अपने चारों लाल कुर्बान कर दिये। इस घटना से अनजान मां ने जब सवाल किया कि मेरे बेटे कहां हैं तो पिता ने बड़े गर्व से सिख पंथ की ओर इशारा करके कहा–

"इन पुत्रन के सीस पर, वार दिए सुत चार।।
चार मुए तो क्या हुआ, जीवित कई हजार।"

वे पिता थे दशम पातशाह गुरु गोबिंद सिंघ जी और अद्वितीय कुर्बानी पाने वाले उनके चार बेटे थे– साहिबजादा अजीत सिंघ (18 वर्ष) , साहिबजादा जुझार सिंघ (16 वर्ष), साहिबजादा जोरावर सिंघ (8 वर्ष) और साहिबजादा फतह सिंघ (6 वर्ष)। अन्याय, अराजकता और अत्याचार का प्रतीक व पर्याय बन चुकी मुगल हुकूमत के खिलाफ इतिहास की अभूतपूर्व और असाधारण थीं ये शहीदियां। छोटे साहिबजादे जोरावर सिंघ और फतह सिंघ सरहिंद में जिंदा दीवार में चिन दिये गये। इन्होंने सिर कटाना मंजूर किया लेकिन सिर झुकाना नहीं। दो बड़े साहिबजादे अजीत सिंघ और जुझार सिंघ दस लाख की विशाल मुगलिया फौज के साथ चमकौर के युद्ध में लड़ते हुए वीरगति पा गये। दोनों लालों को अपने हाथों से शस्त्र पहना कर मैदान–ए–जंग में भेजा था, पिता दशमेश ने। शहीदी तो उन्हें दादा गुरु तेग बहादुर और पंचम पातशाह, गुरु अर्जन देव जी से विरासत में मिली थी। साहिबजादों की शहीदी से ठीक 29

वर्ष पहले सन 1675 ईसवी में इन्हीं दशम पिता ने नौ वर्ष की बाल अवस्था में हिंदू धर्म की रक्षा के लिये, दिल्ली के चांदनी चौक में पिता गुरु तेग बहादुर की कुर्बानी दी। यानी मासूम बेटे के रूप में बाप की कुर्बानी और फिर बाप के रूप में चारों बेटों की कुर्बानी। न उफ तब की, न उफ अब की। बल्कि शुक्र किया अकाल पुरख का कि धर्मरक्षा का वह उद्देश्य पूरा हुआ जिसके लिये अकाल पुरख के आदेश से उन्होंने इस संसार में जन्म लिया था। गुरूदेव के इस लासानी त्याग से अभिभूत मुहम्मद अब्दुल गनी ने, उनकी स्तुति में लिखाः

"शुक्र अकाल पुरख का कीआ तब उठा के सर।
और अर्ज़ की कि बंदे पे कृपा की कर नज़र।
मुझ से आज तेरी अमानत अदा हुई।
बेटों की जां, धर्म की खातिर फ़िदा हुई।"

कहां मिलेगी धर्मरक्षा के लिये अपना पूरा वंश न्यौछावर कर देने की ऐसी दूसरी मिसाल! यकीनन कहीं नहीं, कभी नहीं। पहले पिता वारा, फिर वार दिये बेटे। अपने इसी बेमिसाल त्याग के कारण गुरु गोबिंद सिंघ इतिहास के लासानी पुरुष बने।

कृतज्ञ पंथ और देश चारों साहिबजादों की शहीदी की **तीसरी शताब्दी मना रहा है।** जब तक इंसान और इंसानी सभ्यता कायम है, जांबाज और स्वाभिमानी साहिबजादों की शहीदी की शौर्य गाथा घर–घर में गायी जाती रहेगी। धर्म तथा देश की अस्मिता की रक्षा के लिये मर मिटने वालों के रक्त एवं रूह में नये जीवन का संचार करती रहेगी। दशम पिता के लाडले साहिबजादों की इसी गौरव गाथा का बयान करती है यह लघु पुस्तिका। भारतीय इतिहास का गर्व और गौरव बन कर उभरे साहिबजादों को भावभीनी श्रद्धांजलि है, यह पुस्तिका। इस सारगर्भित पुस्तिका के लेखन और प्रकाशन में दिल्ली सिख गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी के प्रधान, महासचिव और अध्यक्ष, धर्म प्रचार कमेटी से मुझे जो प्रेरणा और सहयोग मिला उसके लिये मैं उनका तहेदिल से आभारी हूं। छह अध्याय वाली इस पुस्तिका में साहिबजादों की शहीदी से पहले की पृष्ठभूमि और बाद की घटनाओं को भी दर्ज किया गया है। इससे पाठकों को सिख इतिहास के इस बेजोड़ प्रसंग को विस्तार से और व्यापक परिप्रेक्ष्य में समझने में मदद मिलेगी। इन्हीं शब्दों के साथ यह पुस्तिका 'साहिबजादों की लासानी शहीदियाँ' सुधी पाठकों की प्रतिष्ठा में अर्पित है।

– जगजीत सिंघ

59, कैलाश हिल्स
नई दिल्ली–110065
दूरभाष : 26922218

विषय सूची

1.	सत्य और सत्ता की लड़ाई	1
2.	दीवार में चिनवाये बेटे	5
3.	यों वारे अजीत और जुझारं	15
4.	सिर माथे लिया पंथ का हुकम	20
5.	कायम रखा स्वाभिमान	23
6.	उखड़ी मुगल राज की जड़ें	25

सत्य और सत्ता की लड़ाई

गुरु गोबिंद सिंघ के जीवन का मिशन और मकसद था–

धर्म चलावन संत उबारन,
दुस्ट सबन को मूल उपारन।।

इसी उद्देश्य को हासिल करने के लिए अकाल पुरख के आदेश से उन्होंने इस संसार में जन्म लिया। शक्ति की प्रतीक तलवार के उपासक गुरुजी ने दो टूक शब्दों में कह दिया कि मेरी शमशीर मज़लूमों की रक्षा के लिए है। जब अन्यायी और अत्याचारी से निपटने में अन्य सभी उपाय विफल हो जाएं, केवल तभी अंतिम विकल्प या उपाय के तौर पर तलवार का प्रयोग किया जाना चाहिए–

चूं कार अज़ हमह हीलते दर गुज़श्त।
हलाल अस्त बुरदन ब–शमशीर दस्त।।

चौदह बड़े युद्ध लड़े गुरु गोबिंद सिंघ जी ने। लेकिन ज़र (दौलत) और जमीन के लिए नहीं, बल्कि दुष्टों के दमन और धर्म की रक्षा के लिए। अपनी आत्मकथा में वे खड्गधारण का स्पष्ट उद्देश्य बताते हुए फरमाते हैं:

"खग खंड बिहडं खल दल खंडं अति रण मंडं बरबंडं।।
भुजदंड अखंड तेज प्रचंड जोति अमंडं भान प्रभं।।
सुख संता करणं दुरमति दरणं किलबिख हरणं अस सरणं।।
जै जै जग कारण स्रिष्ट उबारण मम प्रतिपारण जै तेगं।।"

अर्थात मेरी खड्ग शत्रु का नाश करने वाली.... संतों (की दुष्टों से रक्षा कर) को सुख देने वाली तथा दुरमति का दमन करने वाली है.... मेरी ऐसी खड्गरूपा शक्ति की जय हो।

गुरुदेव ने यह खड्ग खुद धारण की और अपने सिखों को धारण करवायी। पहाड़ी राजाओं को गुरु गोबिंद सिंघ जी से इस बात की भारी जलन थी कि वे तथाकथित नीच जाति के लोगों को शस्त्र और शास्त्र विद्या से लैस करके उनके समानांतर खड़ा करने में दिन–रात एक कर रहे हैं। रह–रह उन्हें यह डर खा और सता रहा था कि कल तक हमारी चाकरी करने वाले ये लोग, गुरु की ताकत से कल कहीं हमें, यानी उन्हें ही न पछाड़–उखाड़ फेंकें। तिस पर ब्राह्मणों ने

भी शुरू कर दिया उन्हें उकसाना–भड़काना कि हिंदू धर्म के दुश्मन हैं गुरु गोबिंद सिंघ, कि जिस रीति–नीति पर वे चल रहे हैं, उससे तो रसातल में चला जाएगा हिंदू धर्म। इसलिए उनकी बढ़ती ताकत को नेस्तानबूद करने के लिए हर संभव प्रयास किया जाना चाहिये। फिर वह प्रयास चाहे गुरु के खिलाफ युद्ध ही क्यों न हो।

निशाने पर लगा ब्राह्मणों का तीर। गुरूदेव के खिलाफ एकजुट हो गए पहाड़ी राजा। उतर आए गुरूदेव से वैर कमाने की नीच हरकतों पर। तलाशने लगे उनसे दुश्मनी निकालने और लड़ाई छेड़ने का बहाना। एक–एक करके उन्होंने गुरूदेव के खिलाफ चौदह लड़ाइयां छेड़ीं। लेकिन हर लड़ाई में उन्हें मुंह की खानी पड़ी। हर लड़ाई में सिख विजयी और पहले से अधिक ताकतवर होकर उभरे।

बार–बार की शिकस्त से पहाड़ी राजाओं का मनोबल टूट गया। गुरु गोबिंद सिंघ जी से हर नई टक्कर और उसमें मिलने वाली शिकस्त से वे प्रजा की निगाह में गिरते जा रहे थे। सो, घोर मायूसी की हालत में राजा अजमेर चंद की अगुवाई में राजाओं का दल दक्षिण में औरंगजेब के पास मुखबरी करने गया। उन्होंने उससे गुरु गोबिंद सिंघ के बढ़ते तेज व ताकत को रोकने का अनुरोध किया। खुद औरंगजेब भी नित्य नई बुलंदियों को छूते गुरूदेव के सामाजिक–धार्मिक रुतबे और फौजी ताकत से चिंतित था। सो, उसने लाहौर, जम्मू, मुलतान और सरहिंद के नवाबों को हुकम दिया कि वे एकजुट होकर गुरु गोबिंद सिंघ पर हमला करें। इधर उसने एक चिट्ठी भी भेजी गुरूदेव के पास कि "आनंदपुर छोड़ दो और मुझे आकर मिलो। मुझे अल्लाह ने पातशाही दी है। पीरों वाला अदब करूंगा आपके आने पर।"

चिट्ठी के जवाब में गुरूदेव ने लिखा, "जिसने तुझे बादशाही दी है, उसी ने मुझे इस धरती पर इंसाफ की राह दिखाने के लिए भेजा है। बादशाही तुझे इंसाफ करने के लिए मिली थी। लेकिन तूने तो अल्लाह को ही भुला दिया है. ....तेरा मेरा कैसा मेल?"

इस उत्तर से तिलमिला गया औरंगजेब और उसने गुरुजी पर साझा हमले के लिए हुकम दे दिया। गुरूदेव को खबर मिली कि शाही फौज टिड्डी दल की तरह बढ़ती आ रही है। दशमेश ने संगत के नाम हुकमनामा जारी कर दिया कि शस्त्र धारण करके और जत्थे बना कर आनंदपुर साहिब पहुंचें। धर्मरक्षक युद्ध के लिए करीब दस हजार जवान इकट्ठे हो गए। गुरूदेव ने केसगढ़ का किला

साहिबजादा अजीत सिंघ और दो हजार सिखों के नाम सुपुर्द किया। माहिर सिंघ और शेर सिंघ को कई सैनिक देकर लौहगढ़ भेजा। आलम सिंघ और सुकेत सिंघ को सिखों की एक टुकड़ी के साथ दमदमा भेजा। गुरूदेव स्वयं रह गए आनंदपुर में जहां शाही फौजें जमी हुई थीं।

फौजी छावनी में बदल गया आनंदपुर साहिब। फौजियों की हुंकार, हाथियों की चिंघाड़, शस्त्रों की टंकार के बीच हुई घमासान जंग। जितने मुगल मरते, उससे दोगुने दोबारा आ जाते। जंग तेज होती देख मैदान में कूद पड़े साहिबजादा अजीत सिंघ भी। खुद गुरूदेव ने धावा बोला मुगलों पर। इस जंग में दो बड़े मुगलिया सरदार अजीम खान और दिलावर खान मारे गए। शाम होते–होते शाही फौज के पाँव उखड़ गए। फूल गया दम। लगे हांफने। जान बचा कर भाग खड़े हुए वे। फतह खालसा की हुई, उस दिन।

इस हार से निराश और खीझे मुगलों तथा पहाड़ियों ने नई रणनीति बनाई। उन्होंने आनंदपुर साहिब को पूरी तरह से घेर लिया। रोक दी राशन–पानी की सप्लाई। नदियों–नहरों पर लगा दिया सख्त पहरा। भूखे–प्यासे रह कर भी 'चढ़दी कला' यानी उच्च मनोबल में थे गुरु के सिख। हालत यहां तक आ गई कि मुट्ठी भर चने खाकर करने लगे गुजारा। दम तोड़ गए प्रसादी हाथी और गुरूदेव का प्रिय नीला घोड़ा। संकट की इस घड़ी में चालीस सिख छोड़ कर चले गए गुरूदेव को। भूख–प्यास ने निढाल होकर फेंक दी उन्होंने ढाल–तलवार। तोड़ लिया गुरु से नाता और लिख कर दे दिया बेदावा कि आप हमारे गुरु नहीं, हम आपके सिख नहीं।

पहाड़ी तथा मुगलिया हकूमत ने अपने–अपने धार्मिक चिन्हों की सौगंध खाकर गुरूदेव से कहा कि अगर वे आनंदपुर को छोड़ दें तो उन्हें किसी किस्म का नुक्सान नहीं पहुंचाया जाएगा। एक तो गुरूदेव अपने सिखों को अकेला छोड़ कर जाना नहीं चाहते थे, दूसरे उन्हें मुगलों और पहाड़ी राजाओं की कसमों पर विश्वास भी नहीं था। लेकिन संगत ने ऐलान कर दिया कि अगर पंथ की सलामती के लिए गुरूदेव ने आनंदपुर नहीं छोड़ा तो सभी नगरवासी प्राणं त्याग देंगे। संगत के प्यार और श्रद्धा के आगे झुक गए गुरूदेव। 20-21 दिसम्बर 1704 की रात्रि को छोड़ दिया आनंदपुर साहिब। जैसा गुरूदेव ने सोचा था, वैसा ही हुआ। झूठी निकलीं सभी कसमें। अभी गुरुजी ने कीरतपुर पार किया ही था कि शाही फौज ने उन पर धावा बोल दिया। भाई उदै सिंघ और भाई जीवन सिंघ ने बहादुरी

के साथ मुकाबला किया। उन्होंने तब तक दुश्मन को रोके रखा जब तक गुरूदेव परिवार सहित सरसा नदी के किनारे नहीं पहुंच गए।

प्रभात हुई। दुश्मन की गोलियों की आवाज के बीच सरसा नदी के किनारे 'आसा दी वार' का कीरतन गायन किया गुरूदेव ने। बेशक, जंग में कई सिख शहीदी प्राप्त कर गए थे, लेकिन अभी भी उनका मनोबल कायम था। यहीं बिछुड़ गया पूरा परिवार। माता साहिब कौर और माता सुंदरी जी भाई मनी सिंघ के साथ ज्वालापुर से होते हरिद्वार की ओर चले गए। क्रमशः आठ और छह साल के छोटे साहिबजादे बाबा जोरावर सिंघ और बाबा फतह सिंघ की देखरेख गुरूदेव ने माता गुजरी के हवाले कर दी।

दीवार में चिनवाये बेटे

मां गुजरी छोटे साहिबजादों को लेकर सरसा नदी के किनारे चलते–चलते काफी आगे निकल गईं। रास्ते में उनकी मुलाकात हुई गंगू रसोईये से जिसने करीब बीस–बाइस साल गुरु परिवार में बतौर घरेलू नौकर काम किया था। वह तीनों को अपने गांव सहेड़ी ले आया।

कहते हैं दूध और बुद्धि फटते देर नहीं लगती। यही हुआ गंगू के साथ। मां गुजरी के पास कीमती सामान देख कर उसकी नीयत खोटी हो गई। मां गुजरी को सोया हुआ पाकर रात को उसने उनके सिरहाने से मोहरों की थैली चुरा ली। सुबह हुई तो मां गुजरी ने थैली गायब पाई। उन्होंने गंगू से पूछा। लेकिन वह न केवल साफ मुकर गया बल्कि उल्टे उन्हीं को उस पर झूठा इल्जाम लगाने का दोषी ठहराने लगा। यही नहीं, हुकूमत से इनाम पाने के लालच में उसने मोरिंडा के कोतवाल को सूचित कर दिया कि गुरु गोबिंद सिंघ जी की मां गुजरी और दो छोटे लाल मेरे कब्जे में हैं। हुकूमत चाहे तो उन्हें गिरफ्तार कर सकती है।

"गुरु न सही, गुरु के लाल ही सही"– गुरूदेव पर हाथ डालने में नाकाम और हताश कोतवाल ने खुश होकर सोचा। उसने अपने सिपाहियों को हुकम दिया कि माता जी तथा दोनों साहिबजादों को गिरफ्तार कर लिया जाये। हुकम की तामील हुई और तीनों को गिरफ्तार करके जेल में डाल दिया गया।

दिसम्बर की कड़कती सर्दी। मां गुजरी और साहिबजादों को मोरिंडा की हवालात में नवाब ने बंद कर दिया। पौष की ठंडी रात में, मां गुजरी ने दोनों पोतों को स्नेह के साथ अपने सीने से लगाया और पास बिठा कर उन्हें गुरु अर्जन देव जी, गुरु तेग बहादुर जी तथा अन्य सिखों की लासानी शहीदी की साखियां सुनाई। मां गुजरी ने बताया कि किस प्रकार तुम्हारे दादा गुरु तेग बहादुर जी और उनसे पूर्व उनके (यानी गुरु तेग बहादुर जी के) दादा गुरु अर्जन देव जी ने धर्म और न्याय की रक्षा के लिये शहीद होना स्वीकार किया लेकिन मौत के डर से जालिम सत्ता के आगे झुके नहीं।

ये साखियां सुन कर नन्हें साहिबजादों का मन अपूर्व वीरता और जोश से भर गया। हमेशा नरम मखमली गद्दों पर सोने वाले साहिबजादों ने वह ठंडी रात दादी के साथ चटाई पर सोकर बितायी। नियति अगले दिन उनकी कठिन

परीक्षा लेने की तैयारी कर रही थी।

सुबह हुई। मां गुजरी ने साहिबजादा जोरावर सिंघ और फतह सिंघ को जगाया और उनका माथा चूमा। कोतवाल उन्हें सरहिंद के नवाब वज़ीर खान के पास भेजने का फैसला कर चुका था। सो, थोड़ी ही देर में सिपाही आ गये। उन्होंने मां गुजरी और दोनों साहिबजादों को बैलगाड़ी में बिठाया और बस्सी की कोतवाली की ओर ले जाने लगे। देखते ही देखते सारे नगर में खबर फैल गई। लोग हैरान थे कि बुजुर्ग मां गुजरी और नन्हें साहिबजादों को किस जुर्म में गिरफ्तार किया गया है। लेकिन शस्त्रधारी सिपाहियों से घिरे साहिबजादों के चेहरे पर कोई खौफ या डर का भाव नहीं था। बल्कि उनके मासूम चेहरों से एक अपूर्व रौद्र और जोश झलक रहा था। क्यों न होता? बहादुर पिता के लाड़ले बेटे और धर्मरक्षा की खातिर जान की बाजी लगा देने वाले निडर दादा के स्वाभिमानी पोते जो थे वे। वह निडर दादा तेग बहादुर, जिन्होंने दिल्ली के चांदनी चौक में शीश की कुर्बानी दे दी लेकिन भयंकर यातना के डर से कश्मीरी ब्राह्मणों को धर्मरक्षा के दिये गये वचन से डिगे या डोले नहीं। आखिरी श्वास तक छोड़ा नहीं स्वाभिमान।

मां गुजरी और साहिबजादों को लेकर धूल उड़ाती हुई बैलगाड़ी शाम को सरहिंद पहुंची। नवाब के हुकम से उन्हें ठं डे बुर्ज में रखा गया। कड़कड़ाती सर्दी में ठंडे बुर्ज में रखने का मकसद साफ था– अपने इरादे के पक्के साहिबजादों का मनोबल तोड़ना और उन्हें धर्म से विचलित करना। वह बर्फानी रात साहिबजादों ने मां गुजरी से सिखों की बहादुरी की साखियां सुनते हुए गुजारी। ये साखियां सुन कर साहिबजादों का मनोबल और भी दृढ़ हो गया। उन्होंने मां गुजरी को वचन दिया, "मां जी, हम दशमेश पिता के भाग्यशाली बेटे हैं। हम अपने धर्म की लाज रखेंगे और जान तक कुर्बान कर देंगे–

"धंन भाग हमरे हैं माई,
धरम हेत तन जे कर जाई।"

सुबह होते ही नवाब के सिपाही आ पहुंचे और मां गुजरी को नवाब का हुकम सुनाते हुए बोले, "बच्चों को नवाब साहिब की कचहरी में पेश करने का हुकम हुआ है।" मां गुजरी ने कारण पूछा तो जवाब मिला, "कारण तो हमें भी नहीं मालूम। हमें तो सिर्फ हुकम की तामील करनी है।"

मां गुजरी ने और कोई सवाल नहीं किया। दोनों पोतों को सीने से लगा कर खूब प्यार किया। माथा चूम कर आशीर्वाद दिया और कहा, "तुम उस गोबिंद

सिंघ के बेटे हो जिसने जालिमों के आगे कभी सिर नहीं झुकाया, जिसने धर्म की रक्षा के लिये अपने पिता तक को कुर्बान कर दिया। देखना मेरे लाडलो, कहीं नवाब द्वारा दिये जाने वाले लालच या डर के आगे कमजोर मत पड़ जाना, कहीं अपने धर्म से विचलित मत हो जाना। अपने पिता और दादा की शान को जान की बाजी लगा कर भी कायम रखना। बस यही मेरी तुम दोनों को सीख है।"

दादी के वचन सुन कर दोनों साहिबजादों ने गर्व से सीना तान कर कहा, "मां जी, भला हमसे ज्यादा खुशकिस्मत और कौन होगा जो हमारा शीश धर्म की रक्षा के लिये कुर्बान हो जाये।"

मां गुजरी पोतों के मुख से यह जवाब सुन कर गद्गद् हो गई। दादा वाली दृढ़ता और पिता वाला स्वाभिमान दोनों में कूट–कूट कर भरा था। पूरा हो गया विश्वास कि डोलेंगे नहीं ये दोनों अपने ईमान से। एक बार फिर बच्चों को कस कर सीने से लगाया। आशीर्वाद देकर पोतों को सिपाहियों के साथ भेज दिया मां गुजरी ने। प्रसिद्ध शायर हकीम मिर्जा अलह यार खां जोगी ने सिपाहियों के साथ कचहरी के लिये विदा होते मासूम पोतों के प्रति दादी के वत्सल भावों को यूं बयान किया है:

"जाने से पहले आओ गले लगा तो लूं।
केसों को कंघी करूं ज़रा मुंह धुला तो लूं।
प्यारे सरों पे नन्हीं सी कलगी सजा तो लूं।
मरने से पहले तुमको दूल्हा बना तो लूं।"

बहुत दूर नहीं थी नवाब वज़ीर खान की कचहरी। सो, पैदल ही ले चले सिपाही दोनों साहिबजादों को। नवाब स्वाभिमानी बच्चों को झुकाना चाहता था। सो, जैसे ही वे कचहरी के समीप पहुंचे, बड़ा द्वार बंद कर दिया गया जबकि एक खिड़कीनुमा छोटी सी दरवाजी खुली रखी गई ताकि अपने स्वाभिमान पर नाज करने वाले और हमेशा गर्व से गर्दन तान कर चलने वाले साहिबजादों को अंदर प्रवेश करने के लिये गर्दन झुकानी पड़े और इस प्रकार उनका स्वाभिमान चूर–चूर हो जाये।

साहिबजादे नवाब की चाल समझ गये। सूझबूझ से काम लेते हुए उन्होंने पहले अपने पांव अंदर किये और सिर तान कर अंदर दाखिल हुए। नवाब का दांव विफल गया। "बालिश्त भर के लड़के और इतना अधिक स्वाभिमान, बुजुर्गों जैसी गहरी समझदारी"– वह गुस्से से तिलमिला उठा। इससे पहले कि वह कुछ कहता,

साहिबजादों ने कचहरी में प्रवेश करते ही गरज कर कहा, ''वाहिगुरु जी का खालसा, वाहिगुरु जी की फतह।'' और इस प्रकार उन्होंने नवाब को अपने भीतर मौजूद जोश और 'चढ़दी कला' यानी उच्च मनोबल का पहला परिचय दिया।

नाजुक कलियों जैसे मासूम बच्चे और शेरों जैसी दलेरी! नवाब सहित सारा दरबार दंग रह गया। नवाब के एक दरबारी दीवान सुच्चा नंद ने उठ कर साहिबजादों को कहा, ''नवाब साहिब को सिर झुका कर सलाम करो।'' इस पर साहिबजादों ने सीना तान कर जवाब दिया, ''हम परमात्मा और गुरु के अलावा किसी और के आगे सिर नहीं झुकाते। पिता गुरूदेव से हमें यही शिक्षा मिली है।''

हमेशा दूसरों को झुकाने के आदी नवाब और दीवान सुच्चा नंद बच्चों का यह दो टूक जवाब सुन कर गुस्से से आगबबूला हो उठे। इस बार खुद नवाब वज़ीर खान उठा और साहिबजादों को डर तथा लालच एक साथ दिखाते हुए बोला, ''तुम्हारी किस्मत अच्छी है जो तुम मेरे दरबार में जीवित पहुंच गये हो जबकि तुम्हारे पिता और दोनों बड़े भाई मार दिये गये हैं। इस्लाम कबूल कर लो। दुनिया का हर सुख और आराम तुम्हारे कदमों में पेश होगा। और अगर तुमने इस्लाम कबूल नहीं किया तो तुम्हें इतनी भयंकर यातनाएं देकर मारा जायेगा कि भविष्य में कोई भी शख्स सिख बनने की हिम्मत नहीं करेगा।''

ज्यों ही नवाब ने अपनी बात पूरी की, साहिबजादों ने कड़क कर जवाब दिया, ''हम पिता गुरु गोबिंद सिंघ के बेटे हैं। उन्हें मारने वाला कौन पैदा हुआ है? सिखी हमें जान से ज्यादा प्यारी है। दुनिया का कोई भी डर अथवा लालच हमें अपने धर्म से डिगा नहीं सकता। हम उस दादा गुरु तेग बहादुर के पोते हैं जिन्होंने शहीद होना स्वीकार किया लेकिन धर्म नहीं त्यागा। हमारा संबंध उन पूज्य गुरु अर्जन देव जी के कुल से है जिन्होंने शांत और अडोल रह कर शहीदी प्राप्त की। हम इस्लाम कभी कबूल नहीं करेंगे। तुम्हारा जो दिल चाहे करो।''

यह जवाब देकर साहिबजादा जोरावर सिंघ और साहिबजादा फतह सिंघ ने यह स्पष्ट कर दिया कि वे गुरु गोबिंद सिंघ के लाड़ले सिर कटा सकते हैं लेकिन सिर झुका सकते नहीं। बच्चों को झुकाने में नवाब की कोशिश बेकार जाती देख, एक बार फिर दीवान सुच्चा नंद उठा और बच्चों के मन की टोह लेने के मकसद से सवाल किया, ''अगर तुम्हें छोड़ दिया जाये तो तुम क्या करोगे?''

''जंगलों में जाकर सिखों को इकट्ठा करेंगे और तुम्हारे साथ युद्ध करेंगे और जब तक इस जालिम राज का अंत नहीं हो जाता, हम लड़ते रहेंगे''– साहिबजादा

जोरावर सिंघ ने जवाब दिया। उन्होंने सुच्चा नंद को "हमरे बंस रीति इम आई, सीस देति पर धरम न जाई" पंक्ति सुना कर धर्म की बजाय शीश का बलिदान करने की गुरुघर की शानदार परम्परा बताई।

साहिबजादों के चट्टान जैसे मजबूत इरादे देखकर सुच्चा नंद नवाब को और भड़काने के मकसद से बोला, "हुजूर, देख लिये आपने इनके इरादे। इतनी छोटी सी उम्र में ये भरे दरबार में इतनी आग उगल रहे हैं तो बड़े होने पर तो ये अपने पिता की तरह हुकूमत के खिलाफ तबाही मचा देंगे। इसलिये इनका तो अभी इसी वक्त फन कुचल दिया जाना चाहिये।"

सुच्चा नंद का इशारा साफ था। वह चाहता था कि साहिबजादों को तुरंत सज़ा–ए–मौत दी जाये और इस प्रकार सिखों का मनोबल तोड़ने की कोशिश की जाये। लेकिन नवाब के मन में कुछ और ही सोच काम कर रही थी। वह चाहता था कि बच्चों से किसी भी तरीके से इस्लाम कबूल करवा लिया जाये ताकि इतिहास के पन्नों में यह इबारत दर्ज हो जाये कि धर्म पर गर्व और मान करने वाले गुरु गोबिंद सिंघ के बच्चों ने सिखी को त्याग कर इस्लाम अपना लिया और मुसलमान बन गये। साम, दाम, दंड–भेद में से कोई भी उपाय काम न करता देख नवाब वज़ीर खान ने अब प्यार से बच्चों को फुसलाने की कोशिश की। अपने गुस्से पर काबू पाते हुए वह साहिबजादों से बोला, "जाओ अपनी दादी के पास और मेरी बातों पर दोबारा गौर करना। दादी के साथ भी विचार कर लेना और कल सुबह आकर मुझे जवाब देना।" और यह कह कर वज़ीर खान तुरंत उठ कर बाहर चला गया। हालांकि आज के वार्तालाप से उसने जान लिया था कि अगले दिन भी बच्चों का जवाब वही होगा। बच्चों के चेहरे से उसने पढ़ लिया था कि वे क्या कहना चाहते हैं। लेकिन फिर भी उसने सोचा कि शायद वे अपने इरादे से पलट जायें, इसलिये उनके बारे में आज का फैसला कल पर टालना ही उचित समझा।

साहिबजादों को दादी के पास पहुंचा दिया गया। मां गुजरी के पास पहुंच कर साहिबजादों ने कचहरी में नवाब और सुच्चा नंद के साथ हुआ पूरा वार्तालाप सुनाया। मां गुजरी ने दोनों बच्चों को सीने से लगा कर कहा, "शाबाश बच्चो, आज तुमने अपने पिता और दादा के मान और सम्मान को कायम रखा है। कल तुम्हें दरबार में आज से भी ज्यादा भारी धमकियां और लालच दिये जायेंगे। लेकिन तुम डिगना या डरना नहीं। बल्कि अपने पूर्वजों की शहीदियों का स्मरण करना।" यह कह कर मां गुजरी ने दोनों बच्चों को एक बार फिर भरपूर प्यार किया और

उसी ठंडे बुर्ज में उन्हें सीने से लगा कर सो गई।

अगले दिन भी कचहरी में पहले दिन की तरह साहिबजादों से इस्लाम कबूल करवाने के लिये उन्हें तरह तरह के डर और लालच दिये गये। लेकिन वे अपने इरादे पर अटल रहे। नवाब की खीझ और गुस्सा बढ़ता जा रहा था। हुकूमत को इतनी बड़ी चुनौती! और वह भी दो छोटे--छोटे बच्चों द्वारा! यह सोच सोच कर वह तिलमिला उठता। लेकिन उसने साहिबजादों से इस्लाम कबूल करवाने की उम्मीद छोड़ी नहीं थी। सो, गुस्से और खीझ को दबा कर एक बार फिर उसने साहिबजादों को अगली सवेर तक उनकी दादी के पास वापस भेज दिया कि शायद किसी तरह से उनका इरादा बदल जाये।

सुबह हुई। एक बार फिर पिछले दिनों की तरह सिपाही बच्चों को लेने के लिये आ पहुंचे। मां गुजरी को अंदर से कुछ ऐसा महसूस हुआ कि आज उसके प्यारे पोते लौट कर नहीं आयेंगे, कि आज का दिन उसके लिये पोतों से मिलन का आखिरी दिन है। मां गुजरी को गर्व था साहिबजादों पर कि अपने दादा की तरह वे भी अपने ईमान पर अडिग रहे थे और हर परीक्षा में खरे उतरे थे। सिपाही बच्चों को ले चले। हाथ जोड़े मन ही मन अरदास करती हुई दादी तब तक एकटक उन्हें निहारती रही जब तक कि वे आंखों से ओझल नहीं हो गये।

वज़ीर खान की कचहरी में तीसरे दिन भी वही डर, वही लालच दोहराये गये। साहिबजादों को उनकी उम्र का वास्ता देकर कहा गया कि "अभी तो तुम्हारी उम्र खेलने, खाने की है। इस उम्र में शहीद होने की बात करके जिंदगी व्यर्थ क्यों गंवाते हो?"

लेकिन जैसाकि अपेक्षित था, साहिबजादों का वज़ीर खान को एक ही जवाब था, "हम पोते हैं गुरु तेग बहादुर के और बेटे हैं दशमेश के। आता है हमें धर्म की खातिर कष्ट झेलना और सहर्ष मौत को गले लगाना। धर्म को त्याग कर जीने के लिए हम तैयार नहीं। तुम्हारा जो जी आए करो"– तान कर सीना, उठा कर सिर, बुलंद आवाज में जवाब दिया आठ साल के जोरावर सिंघ और छह साल के फतह सिंघ ने। आग लग गई नवाब के तन–बदन में। नन्हीं सी जान और आसमान जितना ऊँचा स्वाभिमान! फिर भी उसने कई और लालच तथा डर दिखा कर साहिबजादों को डिगाने की कोशिश की। लेकिन वह उन्हें डिगा नहीं पाया।

"हमें अपना धर्म प्यारा है। धर्म के आगे संसार की सारी वस्तुएं हमारे लिये तुच्छ हैं। अपने पुरखों की तरह धर्म की रक्षा के लिये हम शीश की कुर्बानी देने

के लिये तैयार हैं:

धरम न तजै हैं, कभी तुरक न बनै हैं।
हम सीस निज दे हैं, जैसे बडियो ने दीऐ हैं।''

कचहरी की चुप्पी तोड़ते हुए दूसरा जवाब आया। अब तो वज़ीर खान का गुस्सा सातवें आसमान पर चढ़ गया। ''इतना गर्व अपने धर्म पर! हुकूमत के आगे सिर तान कर बोलने का इतना साहस!'' गुस्से से नथुने फड़काते हुआ नवाब काज़ी की ओर मुखातिब हुआ और बोला, ''सुना आपने इस बागियों का गुस्ताखी भरा जवाब। इन्हें मासूम मत समझें आप। इन्हें सज़ा देनी ही पड़ेगी।''

सारे वार्तालाप को बड़े गौर से काज़ी देख और सुन रहा था। नवाब की बात का उसने जवाब दिया, ''ये बच्चे बगावत पर तुले हुए हैं। इस्लामी शरीयत के मुताबिक मैं यह सज़ा देता हूं कि इन्हें जिंदा दीवार में चिन कर शहीद कर दिया जाये।''

इतिहास की एक अनोखी और अभूतपूर्व सज़ा। इस घोर अमानवीय सज़ा का ऐलान होते ही कचहरी में एकदम सन्नाटा छा गया। कानाफूसियां होने लगीं। कभी सुनी और देखी नहीं थी किसी ने भी ऐसी सज़ा। वहीं मलेरकोटला के नवाब शेर मुहम्मद भी बैठे हुए थे। काज़ी ने वज़ीर खान को सलाह दी, ''इन दोनों को नवाब मलेरकोटला के हवाले कर दो। इनके पिता गुरु गोबिंद सिंघ के सिखों ने नवाब साहिब का भाई मार दिया था। अब नवाब साहिब के पास मौका है उसकी मौत का बदला लेने का।''

साहिबजादों के लिये इतनी सख्त और अमानवीय सज़ा सुन कर नवाब शेर मुहम्मद का हृदय पहले ही रोष से भरा हुआ था। तिस पर काज़ी के मुंह से उक्त जहरीले शब्द सुन कर वे चुप न रह सके और इंसाफ की दुहाई देते हुए वज़ीर खान से बोले, ''नवाब साहिब, इन बच्चों ने कोई कसूर नहीं किया है। इनके पिता के कसूर की सज़ा इन मासूमों को देना सरासर अनुचित है। वैसे भी मेरा भाई तो लड़ाई में मारा गया था। यह सज़ा शरीयत के खिलाफ है।'' नवाब शेर मुहम्मद की इंसानियत की इस भावना को मिर्जा अलह यार खां जोगी ने इन शब्दों में बयान किया:

''बदला ही लेना होगा तो हम लेंगे बाप से।
महिफूज रखे हम को खुदा ऐसे पाप से।''

लेकिन वज़ीर खान और काज़ी पर नवाब मलेरकोटला की दलील का कोई

असर नहीं हुआ। बल्कि सुच्चा नंद ने यहां तक कहा, "नवाब साहिब, सांप के बच्चों का फन छोटे होते ही कुचल देना चाहिये। बड़े होने पर वे खतरनाक साबित होते हैं।"

नवाब वज़ीर खान ने हुकम जारी कर दिया कि दीवार में चिनने के बाद साहिबजादों का सिर धड़ से अलग कर दिया जाये। दीवार में चिनने की जिम्मेदारी दिल्ली के दो जल्लादों–शिशाल बेग और विशाल बेग को सौंपी गई।

आग की तरह फैल गई मासूम बच्चों को दीवार में चिनने की सज़ा की खबर। पूरे शहर में सन्नाटा छा गया। कोई नवाब और काज़ी को लानत व धिक्कार–फटकार भेज रहा था तो किसी का हृदय इस अमानवीय सज़ा पर ज़ार ज़ार रो रहा था। दिलों में इस अन्याय और अत्याचार के खिलाफ कुछ न कर पाने की एक बेबसी और खीझ थी। "क्या जुर्म किया है इन नन्हीं जानों ने", "इतनी अंधेरगर्दी, इतनी अंधी और अन्यायी हुकूमत", "इन बच्चों की हिम्मत देखो, किस निडरता से कचहरी में नवाब की धमकियों का जवाब दिया है", "आखिर गुरु गोबिंद सिंघ के पूत और गुरु तेग बहादुर के पोते जो हैं। जुल्म के खिलाफ अड़ने, लड़ने और मर–मिटने का जज़्बा और जोश तो इनके खून के हर कतरे में समाया हुआ है", जैसी बातें लोगों के होठों पर आम थीं।

दीवार में चिनने की घड़ी आन पहुं ी। साहिबजादों को लाया गया। दोनों के चेहरे कमल की तरह खिले हुए थे। शांत और स्थिर रह कर शहीदी पाने के जिस मार्ग पर कभी दादा गुरु तेग बहादुर और गुरु अर्जन देव जी चले थे, उसी मार्ग पर चलने की आज उनकी बारी थी। दीवार की चिनाई शुरू हुई। साहिबजादों को दीवार के साथ सटा कर खड़ा किया गया। साहिबजादों ने नेत्र बंद किये, चित में पिता गुरु गोबिंद सिंघ जी, दादा गुरु तेग बहादुर जी और अन्य सिखों की अद्वितीय कुर्बानी का स्मरण किया और होठों पर गुरुवाणी का पाठ करते हुए परमात्मा के ध्यान में जुड़ गये। इंच–इंच कर, ज्यों–ज्यों दीवार ऊँची होती गई, साहिबजादों के मुखमंडल की आभा तेज होती गई। इधर सत्ता के मद में सदा चूर रहने वाले नवाब वज़ीर खान, काज़ी और दीवान सुच्चा नंद के चेहरे बुझे व उतरे हुए थे। उन्हें इरादे के पक्के दो मासूम बच्चों के हाथों करारी शिकस्त खानी पड़ी थी। साहिबजादों को दिया गया हर डर और लालच औंधे मुंह जमीन पर आन गिरा था। मुगलिया हुकूमत के लिये इससे बड़ी मायूसी की बात और क्या हो सकती थी।

दीवार जब साहिबजादों की छाती तक आ गई तो नवाब और काज़ी ने आखिर कोशिश करते हुए कहा, "बच्चो, अब भी समय है। तुम्हारी जान बख्श दी जायेगी। इस्लाम कबूल कर लो बस, यह दीवार तुरन्त गिरा दी जायेगी।"

साहिबजादों ने पहले जैसी ही कड़क आवाज में जवाब दिया, "हम अपने धर्म का त्याग नहीं करेंगे। मौत का हमें कोई भय नहीं। हमें एक तो क्या, अगर करोड़ जिंदगियां भी मिलें तो धर्म के आगे वे सब तुच्छ हैं।"

यह जवाब सुन कर नवाब और काज़ी अवाक रह गये। कितने ही लोगों के नेत्रों से अश्रुओं की अविरल धार बह निकली। जालिम हुकूमत के लिये उनके दिल से फटकार और धिक्कार के शब्द निकल रहे थे। कईयों की मुट्ठियां गुस्से से भिंची हुई थीं। दीवार साहिबजादों के गले तक पहुंच गई। काज़ी के इशारा करते ही एक जल्लाद ने साहिबजादा फतह सिंघ का शीश तलवार के एक ही वार से धड़ से अलग कर दिया जबकि दूसरे जल्लाद ने साहिबजादा जोरावर सिंघ का शीश धड़ से अलग कर दिया। देखते देखते धर्म की बलि वेदी पर कुर्बान हो गये गुरु गोबिंद के जिगर के टुकड़े। कर गये नाम रोशन पिता और दादा का। शीश दे दिया पर मुख से आह तक नहीं निकली।

इधर साहिबजादे शहीदी को प्राप्त हुए, उधर ठंडे बुर्ज में मां गुजरी ने समाधि लगा कर अपने प्राण चढ़ा लिये, त्याग दिया अपना शरीर। इतिहास की इस लासानी शहीदी से फिर एक बार सत्य जीता और सत्ता हारी।

धर्मरक्षा के लिये साहिबजादे शहीद हो गये। उसी रात दीवान टोडरमल नामक जौहरी नवाब वज़ीर खान के पास पहुंचा और निवेदन किया, "नवाब साहिब, इन बच्चों और मां गुजरी के अंतिम संस्कार की अनुमति दी जाये।"

नवाब वज़ीर खान ने जवाब दिया, "इजाजत मिल जायेगी। लेकिन एक शर्त है। संस्कार के लिये जितनी जमीन चाहिये उतनी जगह पर सोने की मोहरें बिछा कर कीमत अदा करनी पड़ेगी।" शर्त अजीब भी थी और अमानवीय भी। लेकिन गुरुघर का परम श्रद्धालु दीवान टोडरमल इस सेवा के लिये हर कीमत चुकाने के लिये तैयार था। वह घर गया और सोने की मोहरों की थैलियां ले आया। अंतिम संस्कार के लिये आवश्यक जमीन का घेरा बना कर उसने सोने की मोहरें बिछा दीं और कीमत चुकता कर दी। इस प्रकार पूरी मर्यादा और सम्मान के साथ उसने मां गुजरी तथा साहिबजादा जोरावर सिंघ व साहिबजादा फतह सिंघ की देह का अंतिम संस्कार किया। साहिबजादों की यह लासानी शहीदी सिख पंथ

में 'साका सरहिंद' के नाम से याद की जाती है। मिर्जा अलह यार खां जोगी ने गुरु गोबिंद सिंघ जी के इन महान सपूतों की इस ऐतिहासिक शहीदी पर श्रद्धा के फूल अर्पित करते हुए लिखाः

"गुरिआई का है किस्सा जहां में बना चले।
सिंघों की सल्तनत का है पौधा लगा चले।।"

यों किये न्योछावर अजीत और जुझार

बाकी परिवार बिछुड़ चुका था। गुरु जी के साथ रह गए दो बड़े साहिबजादे अजीत सिंघ और जुझार सिंघ तथा चालीस सिख। इन्हें साथ लेकर पहुंचे गुरूदेव चमकौर की गढ़ी में।

22 दिसम्बर 1704 का दिन। दुनिया के इतिहास का सबसे अनोखा दिन। जंगी इतिहास में यह एक अभूतपूर्व और असाधारण जंग थी। अभूतपूर्व इसलिये क्योंकि एक ओर थे भूखे–प्यासे चालीस सिख और दूसरी ओर थी हर प्रकार के हथियार से लैस दस लाख की मुगलिया फौज, जिसने चमकौर की गढ़ी और उसमें मौजूद सिखों को चारों ओर से घेर लिया था। एक–एक सिख पर पच्चीस हजार मुगल। इन मुगलों में थे वज़ीर खान सूबेदार सरहिंद, नाहर खां, हैबत खां, इस्माइल खां, उस्मान खां, सुलतान खां, ख्वाजा खिज़र खां, मीयां खां, दिलावर खां, जबरदस्त खां जैसे नामवर सेनापति। वे संख्या में और जिस्म से जरूर थके थोड़े हुए थे। लेकिन मन और मनोबल से एकदम तगड़े थे :

"कहां बीर चाली, छुधावंत भारे।।
कहां एक नौ लाख आए हकारे।।"

सभी सिखों को गुरूदेव ने गढ़ी में इकठ्ठा किया। पंथ और धर्म की खातिर मर मिटने का किया आह्वान। मोर्चे संभाल लिए मुट्ठी भर सिखों ने। कुछ सिखों ने दशम पिता से विनती की, "सच्चे पातशाह, साहिबजादों को लेकर आप गढ़ी से निकल जाएं। यहां मोर्चा हम संभाले रखेंगे। इस पर कलगीधर पातशाह ने फरमाया, "तुम किन साहिबजादों की बात करते हो। तुम सब मेरे साहिबजादे हो।" गुरुदेव ने सभी सिखों को संबोधन करते हुए कहा:

"बोले फिर दशमेश जी खंडा लिशका के।
दस लख वैरी पा लिआ है घेरा आके।
मैं तकणा है बल तुसां दा अज इउं अजमा के।
कि रजदा खंडा किसे दा सिर कितने लाह के।
मैं समझांगा सिख उस नूं जो रण विच जा के।

अज सवा लख नाल लड़ेगा कल्ला हिक डाह के।
जो राह आपणे विच ढेरीयां लोथां दीआं ला के।
फिर डिगू दुश्मण दलां विच सो कानी खानी खा के।
मैं आया पुरख अकाल तों इह आगिआ पा के।
है जिंदा रखणा पंथ नूं पुत्त भेट चढ़ा के।"

अगले दिन चालीस सिखों और दस लाख की मुगलिया फौज के बीच घमासान युद्ध हुआ। जांबाज सिखों के हाथों एक मुगल मरता तो उसका स्थान लेने के लिये टिड्डियों की तरह दूसरा झुंड आ जाता। तीरों की मदद से गुरु के सिख दुश्मन को गढ़ी से दूर रखने में सफल रहे। इधर तीर खत्म हो रहे थे और उधर दुश्मन की फौज गढ़ी के करीब पहुंच गई। सो, सिखों ने गढ़ी से बाहर निकल कर दुश्मन का मुकाबला करने का फैसला किया। पांच–पांच सिखों का जत्था 'बोले सो निहाल, सत श्री अकाल' का जैकारा छोड़ते हुए मुकाबले के लिये गढ़ी से बाहर निकलना शुरू हुआ। दशम पातशाह के '**अत ही रण में तब जूझ मरों**' सिद्धांत पर अमल करते हुए शहीदियां पाते गये गुरु के सिख।

इस घमासान युद्ध को देख कर ज्येष्ठ पुत्र साहिबजादा अजीत सिंघ के हृदय में वैरी से दो–दो हाथ करने का जोश हिलोरे ले रहा था। पिता गुरूदेव से प्राप्त युद्धकला और तेग के जौहर दिखाने का आखिरी मौका आ गया था। पिता गुरुदेव की वीर रस से भरी पंक्तियां "**न डरौं अरि सो जब जाई लरों, निसचै कर अपनी जीत करौं**" रह–रह कर उन्हें युद्ध के मैदान में कूद पड़ने के लिये प्रेरित कर रही थीं। सो, उन्होंने गुरूदेव से आज्ञा मांगी। गुरूदेव ने साहिबजादा अजीत सिंघ की ओर स्नेह से देखा। बेटे के सिर पर प्यार से हाथ फेरा और बोले, "कमर कसो बेटा, तुम्हारा जन्म ही इसीलिए हुआ है कि रण में जूझते हुए शहीदी पा जाओ ताकि जालिमों का नाश हो :

हे सुत। तुम हमको हो पिआरे।।
तुरक नास हित तुम तन धारे।।
जे अपने सिर रन में लागे।।
ता कर नास मलेच्छ सु भागे।।"

साहिबजादा अजीत सिंघ ने पिता का आशीर्वाद लिया और सत श्री अकाल की सिंहगर्जना करते हुए रण में कूद पड़े। बिजली की सी चपलता से टूट पड़े मुगलिया फौजों पर। दुश्मन को ललकारते, पछाड़ते, चीटियों जैसी उसकी लंबी

कतारों को बेंधते, खुद को ढाल की ओट से बचाते, तेग चलाते, सिर काटते, कितने ही मुगलों को अश्व से गिराया, कितनों को यमपुर पहुंचाया। खूब चमकी, दमकी और खड़की रणभूमि में तेग बहादुर के पोते की तेग। साहिबजादे के रणकौशल को मिर्जा अलह यार खां ने यूं कलमबंद किया:

"तलवार वुह खुं–खार थी, तोबा ही भली थी।
लाखों ही की जां ले के, बला सर से टली थी।
पलटन पि गिरी, काट दीआ पल में रसाला।
सर उस का उछाला, कभी धड़ उस का उछाला।
लाशों से वुह जा पट गई, साया जहां डाला।
था खैंच लिया डर से, महु–मिहर ने हाला।

....

तलवार सी तलवार थी किआ जानीए किआ थी!
खूंखार थी खूंबार(खून बरसाने वाली) थी आफ़त थी बला थी।
थी आब या फौलाद पि बिजली की जला(चमक) थी।
यमराज की अम्मा थी, वुह शमशीरि–कज़ा(काल की तलवार) थी।

अलह यार खां साहिबजादे की लासानी बहादुरी का बयान करते हुए आगे लिखते हैं:

"शाहज़ादा इ ज़ी–शाह ने भागड़ थी मचा दी।
येह फौज भगा दी, कभी वुह फौज भगा दी।
बढ़–चढ़ के तवक्को से ज़जाअत्त जो दिखा दी।
सतिगुर जी वहीं किला से बच्चे को निदा(आवाज) दी:–
'शाबाश पिसर खूब दलेरी से लड़े हो!
हां क्यों न हो, गोबिंद के फरजंद बड़े हो।"

और इस प्रकार तेग के कमाल दिखाते हुए पा गए शहीदी तेग बहादुर के पोते और गोबिंद सिंघ के पूत। कर गए स्वजन्म और स्वनाम धन्य साहिबजादा अजीत सिंघ। दशमेश–सुत की लासानी बहादुरी और शहीदी का यशोगान करते हुए लिखा शायर ने:

"बेटा हूं दशमेश का।
जीता कभी न जाऊँगा।।
जीत न पाया अगर।

जीता वापस न आऊँगा।।"

बड़े भाई को शहीद होते देख छोटे भाई, साहिबजादा जुझार सिंघ ने पिता गुरूदेव से मैदान–ए–जंग में उतरने की इजाजत मांगी। आगे बढ़ कर बोले पिता, "ठहरो बेटा।" चूमा दशमेश ने लाल का भाल। छिड़का केसर उसके फूल से कोमल बदन पर। सजाये नन्हें से जिस्म पर भारी भरकम शस्त्र और फरमाया यूं मुख से:

"ले आओ तनि–पाक पे हथियार सजा दें।
छोटी सी कमां नन्हीं सी तलवार सजा दें।
हम देते हैं खंजर उसे शमशीर समझना।
नेज़े की जगह दादा का तुम उसे तीर समझना।
जितने मरें इस से उन्हें बे–पीर समझना।
जख्म आये तो होना नहीं दिलगीर, समझना।
जब तीर कलेजे में लगे 'सी' नहीं करना।
'उफ़' मुंह से मेरी जान, कभी भी नहीं करना।"

गुरूदेव ने साहिबजादे को छाती से लगाया, सिर पर स्नेह से हाथ रखा। आशीर्वाद देते हुए बोले, "अब जाओ बेटा। यहां भी यश पाओ और उस लोक में भी।" साहिबजादे के साथ पांच सिखों को भी विदा किया।

हकीम मिर्जा अलह यार खां ने गुरुदेव द्वारा धर्मरक्षा के लिये साहिबजादे को अपने हाथों से विदा करने के इस भावपूर्ण नजारे को बयान करते हुए लिखा:

"लो जाओ सिधारो! तुम्हें करतार को सौंपा।
मर जाओ या मारो, तुम्हें करतार को सौंपा।
रब्ब को न बिसारो, तुम्हें करतार को सौंपा।
सिखी को उभारो, तुम्हें करतार को सौंपा।
वाहगुरु अब जंग की हिम्मत तुम्हें बख्शे।
प्यासे हो जात, जामि–शहादत तुम्हें बख्शे।"

गढ़ी से निकलते ही दुश्मन की फौज पर शेर की तरह टूट पड़े जुझार सिंघ। वैरी पर जिस तरीके से तेग उन्होंने घुमायी, उसे देख कर मुगलों ने भी दांतो तले उंगली दबाई। बीस–बीस सैनिकों पर भारी थे वे। जूझे, खूब जूझे और आखिरी दम तक वैरी से जूझते रहे जुझारू जुझार सिंघ। **'निसचै कर अपनी जीत करौं'** के गुरु सिद्धांत को चित में धारण कर वे भी बड़े भाई की तरह अपनी जान

पंथ और देश की आन, बान और शान की खातिर न्यौछावर कर गए। कर गए जीवन सफल। लिख गए शहीदी की अमिट इबारत। साहिबजादे के अद्भुत शौर्य और अदम्य साहस की गौरव गाथा को अलह यार खां ने यूं बयान कियाः

''दस बीस को जख्मी कीआ, दस बीस को मारा।
इक हमले में इस एक ने इक्कीस को मारा।
खन्नास(दैत्य) को मारा कभी इबलीस(शैतान) को मारा।
गुल मच गयाः इक तिफ़ल(बच्चे) ने चालीस को मारा।
बच बच के लड़ो कलगियों वाले के पिसर से।
येह नीमचा(छोटा खांडा) लाये हैं गुरु जी की कमर से।

....

शहज़ादे के हरबे(हथियार) से श़ज्जा–उ–जरी(बहादुर) हारे।
जी–दारे(दिल–गुर्दे वाले) के जी छूट गये सभ कवी(बलवान) हारे।
मासूम से बाज़ी वुह सभी लशकरी हारे।
कमज़ोर से निरबल से, हजारों बली हारे।''

स्वर्गीय राजकवि इंदरजीत सिंघ 'तुलसी' के शब्दों में :

जीत गए सो अजीत सिंघ।
जूझ गए सो जुझार।।

साहिबजादों की शहीदी पर परमात्मा का आभार प्रकट किया गुरुदेव ने और फरमायाः

''आज खालसा खास भयो,
सतिगुर के दरबार।।''

पंथ का हुकम सिर माथे पर

पैंतीस सिख भी शहीद हो गए चमकौर की जंग में। इनमें पांच प्यारों में से तीन प्यारे– भाई मोहकम सिंघ, भाई साहिब सिंघ और भाई हिम्मत सिंघ भी शामिल थे। साहिबजादों की बेमिसाल शहीदी और उस शहीदी के स्थल पर श्रद्धा के फूल अर्पित करते हुए मिर्जा अलह यार खां ने लिखा: "भारत में अगर कोई महान तीर्थ स्थल है तो वह है 'चमकौर की धरती' जहां किसी पिता ने अपने जिगर के टुकड़ों को अपने हाथों से शस्त्र पहना कर मैदान–ए–जंग में मौत को गले लगाने के लिये भेजा।"

अगले दिन गुरूदेव ने खुद मैदान में उतरने का फैसला किया। इस पर पांचों सिखों ने गुरमता यानी पंथक प्रस्ताव पारित किया और गुरुजी से विनती की, "आपने ही कहा था कि पांच सिख गुरु के आगे अरदास करके जो भी फैसला करेंगे वह पांच प्यारों का पंथक फैसला होगा। और ऐसे हर फैसले को आप पंथ का हुकम मान कर पंथ खालसा के हित में स्वीकार करेंगे। सो, हम पांच प्यारों की हैसियत से, आप के द्वारा बख्शे हुए अधिकार के अनुसार, आपको हुकम देते हैं कि आप चमकौर की गढ़ी छोड़ कर चले जायें। हुजूर पातशाह के जीवन से जुड़ा हुआ है पंथ का जीवन। और ऐसा करके आप पंथ को चढ़दी कला में ले जा कर दोबारा प्रफुल्लित कर सकेंगे।"

त्राहि–त्राहि करती मानवता के कल्याण के लिए, अत्याचार और आततायी को जड़ से मिटाने के लिए पंथ और वतन को अभी दशमेश की और जरूरत थी। अधूरा था अभी 'धर्म चलावन' और 'संत उबारन' का मिशन। मानवता के हित में गुरूदेव ने पांच प्यारों का आदेश मान लिया। पांचों सिखों को गढ़ी में बाइज्जत अपने आसन पर बिठाया। फिर उतारी अपनी कलगी और पहना दी भाई संत सिंघ को। इसके बाद दशमेश पिता ने पांचों सिखों की परिक्रमा की। उनके आगे माथा टेका। शीश निवाया। इस प्रकार पंथ को गुरुता प्रदान करके गुरूदेव निकले गढ़ी से बाहर। मुगलों को सुनाने–बताने के लिए दशमेश ने जोर से ताली मारी और ऊँची आवाज में घोषणा की, "गुरु जा रहा है।" गुरूदेव के प्रस्थान के बाद गढ़ी मे बचे पांचों सिख वैरी से युद्ध करते हुए शहीदी पा गए।

चमकौर की गढ़ी से निकल कर कई दिन, कई रात चलते हुए गुरूदेव माछीवाड़ा पहुंचे। बिछुड़ चुके थे परिवार और सिख। गुरूदेव का शरीर थकावट और भूख–प्यास

से निर्बल हो गया था। तार–तार हो गए थे वस्त्र। दीन–दुनी के पातशाह, अकाल पुरख के लाडले सुत, मां गुजरी के लाल, वैरी के काल, खालसा के रूहानी पिता के पांव, नंगे पांव चल–चल कर छाले और जख्मों से भर गए थे। भूख मिटाने के लिए कुछ न मिलने पर उन्होंने खाए जंगली फल। ईटों का सिरहाना बना कर पत्थरीली धरती का किया बिछौना। नंगे बदन काटी पौष–माघ की ठंडी रातें। शरीर कमजोर हुआ था, दिल और इरादे मजबूत थे। स्वाभिमान तो ऐसा कायम था कि सोते हुए भी हाथ होता तलवार की मूठ पर। सब कुछ सहते हुए हमेशा याद रखा प्रभु–प्यारे को। उसके वियोग में माछीवाड़ा की धरती पर उच्चारा यह शबदः

मित्तर पिआरे नूं हाल मुरीदां दा कहणा।।
तुधु बिनु रोगु रजाईयां दा उढण,
नाग निवासां दे रहणा।।

माछीवाड़ा के जंगल में गुरूदेव की भाई दया सिंघ, भाई धर्म सिंघ और भाई मनी सिंघ से भेंट हुई। उन्होंने बताया कि वैरी की फौज उनकी खोज में चप्पा–चप्पा छानती, बीनती आ रही है। इसलिए पंथ के हित में गुरूदेव का यहां से निकलना ही उचित होगा। शरीर की कमजोरी के कारण चलने में असमर्थ थे गुरूदेव। सो, भाई मनी सिंघ ने उन्हें अपने कंधे पर उठा लिया। पास के कुंए पर ले गए। गुरूदेव ने शीतल जल पिया और कई दिन बाद स्नान किया। यहां गुलाब मसंद ने खूब सेवा–सत्कार किया। शाही फौजें अभी भी पीछा कर रही थीं। ऐसे में मदद के लिये आगे आये गुरु दरबार के परम श्रद्धालु दो मुसलमान भाई – गनी खां और नबी खां। उन्होंने गुरुजी का वेश बदलवाया। एक पालकी में बिठाया। 'उच्च का पीर' बता कर ले गए मुगलों से बचा कर। हेहर, लुधियाना पहुंच कर गुरूदेव ने पुत्रों की तरह प्यार देकर दोनों भाईयों को विदा किया। कुछ समय वे महंत कृपाल दास के पास रहे। इसके बाद पहुंचे जट्टपुरा। वहां के मुस्लिम सरदार ने गुरूदेव की खूब आवभगत की। शारीरिक कष्टों से छुटकारा मिलते ही पुनः संगठित किया पंथ को। इन्हीं दिनों गुरूदेव को छोटे साहिबजादों को दीवार में चिन कर शहीद किए जाने की खबर मिली। दशमेश ने ईश्वर का शुक्राना किया कि "याही काज धरा हम जनमम्" का कर्तव्य पूरा हुआ।

जट्टपुरा से गुरूदेव दीना आए और एक श्रद्धालु चौधरी शमीर के पास ठहरे। यहां उन्होंने वेतन पर कुछ जवान भर्ती किए ताकि वे आड़े वक्त पर काम आ सकें। इसी स्थान पर रहते हुए गुरूदेव ने औरंगजेब को फारसी में चिट्ठी

भेजी। 'ज़फरनामा' (जीत का पत्र) नाम दिया गुरूदेव ने इस पत्र को। चिट्ठी में कड़े शब्दों में औरंगजेब को फटकारते हुए लिखा"…..वाकिफ नहीं था मैं वायदा तोड़ने वाले इस मर्द (औरंगजेब) से। हे औरंगजेब, न तो तू कायम है धर्म–ईमान पर और न ही दीन की शरीयत पर। तुझे न पहचान है धर्म की और न ही तेरा भरोसा है हज़रत मुहम्मद पर। सच्चा धर्मी कभी अपने वचन–वायदे से पीछे नहीं हटता। वचन को भंग करने वाले इस आदमी पर रंचमात्र भी विश्वास नहीं किया जा सकता। इसके लिए कुरान की कसम क्या चीज है?…..मर्द को चाहिए कि वह वचन का हो पूरा….. मुझे तेरी इस अजीब धर्मपरस्ती पर अफसोस है, सौ बार अफसोस है. …क्या हुआ जो मेरे चार बच्चे मारे गए। कुंडलिनी नाग (खालसा) तो जिंदा है अभी…..मैं नहीं मानता कि तूने खुदा को पहचाना है क्योंकि तेरे हाथों अनेक दिल दुखाने वाले काम हुए हैं। इसलिए तुझे कृपालु रब भी नहीं निवाजेगा….अब तो तूं अगर कुरान की सौ कसमें भी खाए, तो भी मुझे तुझ पर भरोसा नहीं होगा….।"

भाई दया सिंघ और भाई धर्म सिंघ ने दक्षिण में अहमद नगर में जाकर औरंगजेब को ज़फरनामा दिया। पढ़ कर बादशाह के दिल पर गहरा असर हुआ। पहली बार उसे गुरु तथा खालसा पंथ के प्रति किए गए जुल्म और जबर के लिए अफसोस हुआ। उसने भाई दया सिंघ और धर्म सिंघ को सही–सलामत वापस भेजा। साथ ही यह फरमान भी जारी कर दिया कि गुरूदेव के साथ कोई बुरा सलूक न किया जाए।

यह खूबी सिर्फ और सिर्फ गुरु गोबिंद सिंघ की ही है कि नौ वर्ष की कच्ची उम्र में कश्मीरी पंडितों की पुकार पर उन्होंने पिता श्री गुरु तेग बहादुर जी को हिंदू धर्म की रक्षा की खातिर दिल्ली में शहीद होने के लिए विदा किया और धर्मक्षेत्र में आने पर धर्मयुद्ध में अपने चारों बेटों की आहुति दे दी। यानी बाल अवस्था में खुद मासूम बेटे के रूप में पिता की कुरबानी और 29 साल बाद पिता के रूप में मासूम बेटों की कुरबानी! पिता दिया और दिए बेटे भी! उम्र के हर दौर में रचा नया इतिहास। और इसीलिये इतिहास का यह पहला और आखिरी वाकया था। सब कुछ देश और पंथ पर न्यौछावर कर के भी उफ तक नहीं की गुरूदेव ने। बल्कि साहिबजादों को आसपास न पाकर उनकी मां ने जब सवाल किया कि कहां हैं मेरे सुत चार तो खालसा पंथ की ओर इशारा करके कहा गुरूदेव ने कहा–

"इन पुत्रन के सीस पर, वार दिए सुत चार।।
चार मुए तो क्या हुआ, जीवित कई हजार।"

कायम रखा स्वाभिमान

गुरु गोबिंद सिंघ के साहिबजादों ने धर्मरक्षा की खातिर स्वेच्छा से शहीदी को गले लगा कर दादा गुरु तेग बहादुर और उनसे पूर्व पंचम पातशाह गुरु अर्जन देव जी की शहीदी की परम्परा को आगे बढ़ाया। दूसरी ओर खेलने-खाने की अल्हड़ उम्र में जान की कुर्बानी देकर मासूम साहिबजादों ने यह भी साबित कर दिया कि सिखी में शहीदी के लिये उम्र का बड़ा या छोटा होना महत्वपूर्ण नहीं। बल्कि महत्वपूर्ण है शहीदी का उद्देश्य और जुल्मो-सितम के खिलाफ 'जूझ मरने' का जज़्बा फिर चाहे शहीदी पाने वाले की उम्र कुछ भी हो। यहां गुरु अर्जन देव जी 43 वर्ष और गुरु तेग बहादुर जी 54 वर्ष की आयु में शहीदी प्राप्त करते हैं। दूसरी ओर शहीदी के समय साहिबजादा जोरावर सिंघ की आयु 8 वर्ष और साहिबजादा फतह सिंघ की 6 वर्ष थी। इसी प्रकार चमकौर के युद्ध में वीरगति पाने वाले साहिबजादा अजीत सिंघ 18 वर्ष और साहिबजादा जुझार सिंघ 16 वर्ष के थे।

खासकर साहिबजादा जोरावर सिंघ और साहिबजादा फतह सिंघ की शहीदी की चर्चा करें तो एक बात यकीनी तौर कही जा सकती है कि इस्लाम कबूल करने पर उन्हें जान की बख्शी के अलावा जिंदगी की हर सुख सुविधा हासिल हो सकती थी। लेकिन दीन-दुनिया के पातशाह के बेटों ने शहीदी को गले लगाया। उन्हों ने यह साबित किया कि गैरत का गला घोंट कर और गुलामी को गले लगा कर सौ साल जीने से तो स्वाभिमान के साथ मरना लाख दर्जे बेहतर है।

पूज्य दादा तेग बहादुर और पिता गुरूदेव की तरह साहिबजादों में स्वाभिमान कितना कूट कूट कर भरा था, इसकी एक मिसाल इतिहासकार श्री हरि राम गुप्ता अपनी पुस्तक 'THE SIKH GURUS' में इतिहासकार सय्यद मुहम्मद लतीफ का हवाला देकर बयान करते हैं। हवाले के मुताबिक, जब गुरु गोबिंद सिंघ जी मुट्ठी भर सिखों के साथ चमकौर की गढ़ी में थे तो मुगलिया फौज के सेनापति ख्वाजा मुहम्मद खां और नाहर खां ने एक संदेशवाहक के ज़रिये उन्हें यह संदेश भेजा कि आपको यानी गुरु साहिब को यह याद रखना चाहिये कि अब आपका मुकाबला मामूली, घटिया और अनुशासनहीन पहाड़ी राजाओं की सेना के साथ नहीं बल्कि शहनशाहे

आलम औरंगजेब की अजेय सेना के साथ है। इसलिये आप टकराव का रास्ता छोड़ कर इस्लाम कबूल कर लें। यह सुन कर साहिबजादा अजीत सिंघ का चेहरा गुस्से से तमतमाने लगा। साहिबजादे ने म्यान से तलवार निकाल ली और संदेशवाहक को पलट कर कड़कती आवाज में जवाब दिया, ''अब अगर तुमने दोबारा ये शब्द हमारे सेनापति गुरूदेव के बारे में जुबां से निकाले तो मैं तेरा सिर धड़ से अलग करके तेरे जिस्म के टुकड़े टुकड़े कर दूंगा।'' यह सुनते ही संदेशवाहक डर से थरथर्राने लगा और अपना सा मुंह लेकर वापस लौट गया।

उम्र से गुरु के साहिबजादे बच्चे थे, लेकिन उनकी सोच और संवेदनशीलता बुजुर्गों वाली थी। इसीलिये सिख इतिहास में संबोधन करते समय उनके नाम से पहले 'बाबा' का परम आदरसूचक शब्द प्रयोग किया जाता है।

उखड़ी मुगल राज की जड़ें

कहते हैं इतिहास की हर घटना देश और कौम के लिये एक निर्णायक मोड़ साबित होती है। ऐसा ही हुआ सरहिंद और चमकौर की घटनाओं के बाद। सिख इतिहास का खूनी अंश बन गई सरहिंद और चमकौर की घटनाएं जो आज सिख पंथ में 'साका सरहिंद' और 'चमकौर दा साका' के नाम से जानी, सराही और बड़े सम्मान के साथ याद की जाती हैं। साहिबजादों के शौर्य की गाथाएं पंजाब के घर–घर में बयान होने लगीं। लोकगीत और लोकगाथा बन गई साहिबजादों की शहीदी। खासकर सरहिंद की खूनी दीवार सिख राज की नींव का पत्थर साबित हुई। मुगलिया हुकूमत के जुल्मो–सितम के खिलाफ पहले ही लड़ाई जारी थी। सरहिंद और चमकौर की लड़ाईयों ने सिखों को नये सिरे और दूने जोश से लामबंद होने और जालिम हुकूमत को जड़ से उखाड़ फेंकने का प्रण लेने का मौका दे दिया। और यह प्रण पूरा हुआ करीब चार साल बाद 1708 ईसवी में जब गुरु गोबिंद सिंघ जी ने नांदेड़, महाराष्ट्र में अपने प्रवास के दौरान सिख पंथ की अगुवाई करने का जिम्मा बाबा बंदा सिंघ बहादुर को सौंपा। बुलंद पहाड़ जैसी कद्दावर शख्सियत वाले बंदा सिंघ बहादुर ने साहिबजादों के प्रति किये गये अमानुषिक जुल्म का बदला लेने के लिये दक्खन में नांदेड़ से पंजाब की ओर प्रस्थान किया। 12 मई, 1710 ईसवी के दिन सरहिंद से करीब बारह कोस की दूरी पर चोपड़चिड़ी के मैदान में सिखों और मुगलों के बीच घमासान युद्ध हुआ। इस युद्ध में साहिबजादों का कातिल सरहिंद का नवाब वज़ीर खान मारा गया और इस प्रकार उसे अपने किये की सज़ा मिल गई। दो दिन बाद बंदा सिंघ बहादुर की फौज ने 'बोले सो निहाल, सत श्री अकाल' के जैकारों की गूंज में विजेता के रूप में सरहिंद में प्रवेश किया और उसकी ईट से ईट बजा दी। साहिबजादों के कत्ल के दूसरे दोषी दीवान सुच्चा नंद की शाही हवेली को आग लगा दी गई। बंदा सिंघ बहादुर ने सरहिंद में सिख राज कायम किया और बाबा नानक तथा गुरु गोबिंद सिंघ जी के नाम का सिक्का चलाया।

सरहिंद से शुरू हुआ सिखों की विजय का सिलसिला और कारवां लगातार आगे बढ़ता गया। पंजाब के बाद उन्होंने दिल्ली की ओर कूच किया। सन 1766 से लेकर 1783 के बीच उन्होंने दिल्ली पर कई हमले किये। 1783 में निडर

सेनापति बघेल सिंघ की अगुवाई में सिखों ने दिल्ली को फतह किया। सिख लाल किले में दाखिल हो गये और दीवान–ए–आम में सरदार जस्सा सिंघ आहलुवालिया को गद्दीनशीन करके बादशाह घोषित कर दिया। इस प्रकार एक ओर जहां उन्होंने साहिबजादों की शहीदी का बदला लिया वहीं दूसरी ओर अत्याचार और अन्याय की प्रतीक व पर्याय बन चुकी मुगलिया सल्तनत के भी दांत खट्टे कर दिये।

'साका सरहिंद' के बाद साहिबजादों के साथ–साथ मलेरकोटला के नवाब शेर मुहम्मद भी सिखों के हृदय के सम्राट और सम्मान के पात्र बन गये। साहिबजादों को दी गई सज़ा के खिलाफ नवाब साहिब द्वारा उठायी गई आवाज बेशक पत्थरदिल वज़ीर खान का फैसला न बदल सकी, लेकिन जोरदार शब्दों में सज़ा का विरोध करके उन्होंने सिख मानस में सदा के लिये जगह बना ली। सिख पंथ ने भी नवाब साहिब की दिलेरी और कृतज्ञता को हमेशा याद रखा। सिख इतिहास में 'साका सरहिंद' का जब–जब वर्णन आता है, नवाब शेर मुहम्मद द्वारा बच्चों के हक़ में उठायी गई आवाज का भी जिक्र होता है। सच तो यह है कि नवाब साहिब द्वारा सज़ा की खिलाफत के जिक्र के बिना 'साका सरहिंद' का हर प्रसंग अधूरा माना जाता है। इसी प्रकार साहिबजादों तथा मां गुजरी की देह का अंतिम संस्कार करने वाले टोडरमल का नाम भी सिख पंथ में उतनी ही कृतज्ञता के साथ याद किया जाता है।

गुरु गोबिंद सिंघ के लाड़ले साहिबजादों के अदम्य साहस, शौर्य और बलिदान की प्रशंसा में एक कवि ने लिखा है :

"जिस कुल जाति देश के बच्चे,
दे सकते हैं यों बलिदान।
उसका वर्तमान कुछ भी हो,
पर भविष्य है महा महान।"

ਅਪੀਲ

- ਆਪਣਾ ਕੌਮੀ ਇਤਿਹਾਸ ਪੜ੍ਹੋ, ਵੀਚਾਰੋ।
- ਇਤਿਹਾਸ ਵਿੱਚ ਦਰਜ ਕੁਰਬਾਨੀਆਂ ਸਾਡਾ ਸਰਮਾਇਆ ਹਨ।
- ਇਤਿਹਾਸ ਕੌਮਾਂ ਦੀ ਜ਼ਿੰਦ ਜਾਨ ਹੁੰਦਾ ਹੈ।
- ਇਤਿਹਾਸਕ ਘਟਨਾਵਾਂ ਸਾਹਸਹੀਨ ਵਿਅਕਤੀ ਵਿੱਚ ਕੌਮੀਂ ਜਜ਼ਬਾ ਭਰਦੀਆਂ ਹਨ।
- ਆਪਣੇ ਅਮੀਰ ਵਿਰਸੇ ਤੋਂ ਬੇਖ਼ਬਰ ਰਹਿਣਾ ਵੱਡੀ ਭੁੱਲ ਹੈ।